समर्पण और साधना

ओम तत्सदात्मने नमः

साधना में गति लाने के लिए नियम से सुबह-शाम भजन में बैठे। फिर बीच में बैठे, एक दो घंटे बाद फिर बैठे, फिर तीन घंटे बाद बैठ जाय। तो इस तरह से, दस मिनट जो हमारी बैठने की क्षमता है तो दस बार दस दस मिनट बैठें 24 घंटे में। तो प्रेसर बनेगा। यह एक तरीका है। बुद्धि होना चाहिए। इसे हम किसी न किसी तरीके से ले सकते हैं। दूसरा एक और तरीका है। साधना में हमारी धीमी गति क्यों होती है। यह जो हमारी इनर्जी है, पूरी साधना में नहीं लगती। फिर सोच रहे हो, कि हमारी प्रगति नहीं होती। करते नहीं, और सोचते हैं, कि हम आगे बढ़ जायं- इसमें भी इनर्जी खर्च होती रहती है। फिर तर्क करते हैं, कि क्यों नहीं हो रही प्रगति? यह खराबी है हममें, यह खराबी है। इस प्रकार, हम एक जटिल मामले में फंस जाते हैं। ऐसा होना चाहिए, इतने टाइम हमें खाना मिलना चाहिए। इतने टाइम यह होना चाहिए, यह नहीं हो पाता, वह नहीं हो पाता-इन बातों में हम फंस जाते हैं। यही सोचें; और कुछ करें न। यह बाधा है। अनेक बाधाएं हैं। ये परिस्थितियाँ जो भौतिक जीवन की हैं, ये भी बाधाएं बन जाती हैं। उसमें जो हमारी ताकत है, इनर्जी है बहुत वेस्ट (बरबाद) हो जाती है। जैसी भी कंडीशन हो-जाही विधि राखै राम ताही विधि रहिये। जैसे रखेंगे भगवान वैसे रहेंगे। अब इस परिस्थिति में न कुछ मांग करें, न यह सोचें कि ऐसा करें तब हम ठीक रहेंगे। बहुत से साधकों को तो यही फजीहत रहती है, कि देश से परेशानी, जगह से परेशानी। इससे साधना में दिक्कत आती है। समय से परेशानी, फिर परिस्थितियों से परेशानी। इसमें हमारी इनर्जी बहुत जाया होती है। बहुत नष्ट होती है। इसलिये प्रगति नहीं होती। अब इसमें एक ही तरीका है, कि पहले हम अपना अंतःकरण इष्ट को समर्पित कर दें, और इच्छाओं से रहित हो जायं। और जाही विधि राखै राम ताही विधि रहिये। जो परिस्थिति आ जाय उसी को हम स्वीकार कर लें, कि यही हमारे लिए ठीक है। यही हमारा स्वभाव है, यही हमारी प्रकृति है। इसी में हमें रहना है।

अगर हम ज्यादा देर तक भजन में नहीं बैठ सकते, 10 मिनट से ज़्यादा नहीं कर सकते। तो 10 मिनट सुबह बैठें 10 मिनट 8 बजे बैठें, 10 मिनट 10 बजे, 10 मिनट 12 बजे बैठें-ऐसे करते चले जायें-तो फिर प्रेशर बढ़ा सकते हैं। और फिर यह जो कायली है, कि भाई यह तो हम न कर पाएंगे, ऐसी जो कायली आती है, इससे छुटकारा मिल सकता है। और साहस आ सकता है। और जितना हम बाहर

देखेंगे, तो जिस चीज़ का हम चिंतवन करेंगे, ध्यान खींचेगी। फिर ध्यान खींचेगी, तो उसका चिंतवन बन जायेगा। फिर उसी के संकल्प बन जाते हैं। यही तो हम बताते हैं, कि पैट बदल दो, इतनी ही तो बात है। चाहे बुड्ढा हो, चाहे जवान। चाहे रोगी हो, चाहे निरोगी। रोगी है तो धीरे-धीरे करे। इसका कोई मतलब नहीं। श्वासा को कोई बंद नहीं कर देगा। रोगी है, पड़े-पड़े करे। तो अगर करनेवाला है, तो कर सकता है। यह तरीका है। और नहीं तो, मोटी बुद्धि से, लम्बी चौड़ी बातें मार मार कर, यहाँ वहाँ सुनते रहते हैं, और सुनने की क्षमता है नहीं। उतनी बुद्धि तो है नहीं, कि जो सुनते हैं, उसे हृदयंगम कर सकें, तो बस बैठ जायेंगे, कि बाप रे बाप! यह हमारी समझ के बाहर है। हम नहीं कर सकते।

संकल्प आवें, इच्छाएं आवें लेकिन वही इच्छाएं हों, जो हमारे कर्तव्य में आने वाली हैं। हमारे कर्तव्य के विपरीत इच्छाएं न हों। यह हमारा मन है, मन ने मान लिया है यह सब जंजाल। अब इस मन को तो हमने दे दिया है अपने इष्ट देव को, अपने भगवान को। अब शरीर को तो हमने, समर्पण कर दिया है। तो फिर अब जो भी अन्दर से इष्ट का आदेश होगा-बाहर से होगा तो समझ में आएगा। उसी हिसाब से हमको चलना चाहिए। और जब ग्लानि बनती रहती है, तो फिर साधना नहीं होती है। उसका कोई मतलब नहीं, चाहे तुम दस रोज बैठे रहो-चाहे दो रोज बैठे रहो। और अगर इसको छोड़ा नहीं, तो तुम चाहे कितनी कमाई करो, यह रुक नहीं सकती। इसलिए उसका खर्च जो हो रहा है, वह बंद कर दो। तुम बस संकल्प बंद कर दो। तुम्हारे सामने जो कर्तव्य है- वह कर्तव्य, तुम अपना कर्तव्य क्यों नहीं करते हो? तुम अपना कर्तव्य करो-परिणाम देने वाला दूसरा है। कर्तव्य करो। कर्तव्य हम, तब कर सकते हैं, जब हम अनपेक्ष हो जायं। केवल कर्तव्य आरुढ़ हो जायं।

"आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगा रुढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।।"

जो योगारुढ होने में लगा हुआ साधक है, तो उसे कर्मकारणमुच्यते, साधारण कंडीशन में। अनपेक्ष भाव से कर्तव्य कर्म करता रहे और वही उसके लिए ठीक है। अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। प्लानिंग नहीं बनानी चाहिए। चाहे वह धीमी गति का ही हो। कितने दिन में पहुँचे। इससे हमें कोई मतलब नहीं-चाहे गति तेज हो, चाहे धीमी हो। तो गति धीमी और तेज को हम छोड़ देते हैं। क्योंकि यदि अनपेक्ष है, तो धीमी और तेज का कोई मतलब नहीं। यह नियम है। इसलिए अनपेक्ष अगर हो गया, तो समर्पण हो गया-आलराउंडर हो गया। और

'योगारूढ़स्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।'

और जो योगारूढ़ हो गया, उसके लिये है, कि समत्व ही देखे और कुछ न सोचे। संकल्पहीन हो जाय शान्त हो जाय। इसलिए कर्म-आरूढ़ और योगारूढ़ दोनों स्थितियों में अनपेक्ष रहना चाहिए। इच्छाओं से रहित रहना चाहिए। आरम्भ से रहित रहना चाहिए, तब ही साधन सम्पन्न होता है। और यहाँ क्या है, कि हर साधक प्लानिंग करता रहता है-सोचता रहता है। यह सही, यह सही है। यह तो हमें पहले से तय कर लेना चाहिए, कि यहाँ से चलना है, यह सही है, और यह लक्ष्य है। अब बात सोचने की नहीं रह गयी। अब तो चलने की बात है। तो,

हारिए न हिम्मत बिसारिए न हरि नाम,
जाहि विधि राखै राम ताही विधि रहिए।

इसलिए भजन करो। भगवान को सौप दो सब और श्वासा का जप करो। अब तुम यह कह सकते हो कि आप सबको श्वांस जप करने को कह देते हैं, जब कि यह आगे की बात है। तो जब विधि पूर्वक किसी चीज़ को समझाने का वक्त मिलता है, तो नियम का ख्याल किया जाता है, और जिस स्तर का साधक है, उसके लिए उसी स्तर का साधन बताया जाता है। और जब जनरल सबके साथ बात होती है, तो एक जैसी बात सबके लिए बताई जाती है। चाहे वह बड़ा साधक हो, चाहे वह छोटा साधक हो। जैसे, श्वासा का भजन हम अक्सर बताते हैं, तो उसका मतलब यह है, कि यह मूलबंध है। मूल है। इसलिए यह छोटे से छोटे साधक को, मध्यम वाले को, सभी को यह बताया जा सकता है। इसमें फर्क नहीं पड़ता। फर्क इसलिए नहीं पड़ता, क्योंकि यह मूलबंध है। इसके बिना न वे साधन चल सकते हैं, जो पहले होते हैं। और न वो चल सकते हैं, जो आगे चल कर होते हैं। मूलबंध को तो लेना ही पड़ेगा। इसलिए चाहे छोटा साधक आए-तो कहेंगे हां खूब भजन करना, श्वासा में लगे रहना। और जो उच्च कोटि के साधक हैं, उनसे भी श्वासा में भजन की बात गलत नहीं होती। भारी गड़बड़ी आ जाये कोई, दिक्कत आ जाय-तो इससे उसे लाभ मिलेगा। और अगर निम्न कोटि का साधक है, तब भी चलेगा। अब श्वासा तो स्थूल से बैखरी से ले सकते हैं, मध्यमा से ले सकते हैं, पश्यंती से ले सकते हैं, परा से ले सकते हैं- कई तरीके हैं। यह तो परसनल है, उसका। इसलिए महात्माओं की अपनी शैली होती है। एक उनका (कामन) शब्द बन जाता है, जो छोटे बड़े सबके लिये लागू होता है। श्वासा का जप कामन है। सबके लिए बताया जा सकता है। कोई महात्मा अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। बाहर कोई आया-हां ठीक है। मन से त्याग

करो, बाहर से कुछ मतलब नहीं। तो इस तरीके से, चाहे साधक कमजोर ही क्यों न हो–उसे कुछ आगे की बात बताना ठीक रहता है। अगर कमजोर साधक है, तो कहेगा, हमें तो राम–राम जपना चाहिए। इतना तो वह जानता ही है। सामान्य हालत में–जब सत्संग का मर्म बताने का मौका नहीं है–ऐसे ही कुछ कहा जाता है, चलते–चलते। तो वहां फिर थोड़ी आगे की बात करना अच्छा रहता है। तीसरे क्लास का छात्र है, तो पांचवे क्लास की बात करें, तो उसे अच्छा लगेगा–सुनेगा और प्रभावित होगा।

श्वासा का जाप, थोड़ा हायर लेबल का है। इसलिए जो साधक निम्न स्तर का है, उसे भी थोड़ा हायर लेबल की बात बताना ठीक रहता है। और जो हायर लेबल का है, उसे तो हायर लेबल का बताना ही है। इसलिए इसको बताना उचित है, अनुचित नहीं है। अनुचित यों होगा, कि यदि वह विधिपूर्वक सत्संग के द्वारा प्रश्न करे, और फिर यही बात तुम बताओ। तब तो वही बताना उचित होगा, जो वह पूछता है। यहाँ तो अपनी तरफ से बताया जा रहा है। इसलिए यह तो अपने मूड (मौज)पर है। क्या नहीं दे सकता? आशीर्वाद दे रहा है। उसने डिमांड तो की नहीं। डिमांड अगर करे, तो फिर जो डिमांड हो, उसके अनुसार, निम्न श्रेणी का हो–निम्न श्रेणी का बताना चाहिए, उच्च श्रेणी का हो–उच्च श्रेणी का बताना चाहिए। हाँ ऐसे है। उसकी चीज़ को उसी को सौंप कर, बस पार हो जाय।

"तुझी ने सब कुछ दिखाया, तुझे क्या दीपक दिखाऊं? उसके अतिरिक्त और है कौन? यही तो प्रश्न है। और इसका हल तब मिलेगा, जब हम उसके पीछे पड़ेंगे। क्या कभी पकड़ में आऐंगे? ये तो हमारे ऊपर कंट्रोल (कबजा) किये हैं, और हमसे भिन्न हैं, जैसे हमसे कहला रहे हैं, कि हम आपके थोड़े हैं।वो तो अजनबिया हैं, पता नहीं कहां से आकर बैठ गए हैं। अगर हम इस तरह न होते, स्थिति न होती, तो आते कहां से? यही तो सही मार्ग है। और हम ऐसा नहीं करते, सब तुम्हारे ही हाथ में आ जायेगा, तो फिर तुम्हें ज़रूरत ही क्या रहेगी समर्पित करने के लिए? तो फिर ज़रूरत ही क्या पड़ेगी तुम्हें, गुरु बनाने के लिए? तुम स्वयं गुरु हो। अब जब यह समझ में नहीं आता, तब न हम सिर ठोंक रहे हैं किसी के सामने? रो रहे हैं, गा रहे हैं, कि यह द्वंद्व हल हो जाय हमारा। भारी दिक्कत है। ये कहां के कौन हैं (सारे विकार), ये भूत, हमें पेरे पड़े हैं। नचा रहे हैं–चारों तरफ, पता नहीं किसके हैं–ये। हमें यही नहीं पता है।

तो फिर एक ही तरीका है। और तो कोई तरीका है नहीं। आज तक किसी को मिला नहीं। इसी के लिये महापुरुषों ने मार्ग तलाशा। तरीका यह निकाला, कि जो कुछ भी, और जिसके भी ये हैं-हम इनसे बचें। हम इनसे काम न लें। किसी को दे दें। अपने भगवान को दे दें। भगवान को मालिक बना दें। और हम तटस्थ हो जायं। हो सकता है, तब इनका पता लग जाय। तब इनकी गतिविधि का ज्ञान हो। तब इनके रूप का पता लगे। तब यह पता लगे, कि ये क्या रूप कला बदलते हैं। तो एक ही तरीका है, कि हम इनको यूज (प्रयोग) न करें। हम इनको समर्पित कर दें। कि हे भगवान आप ही संभालिये। जैसे अर्जुन ने कृष्ण भगवान को समर्पण कर दिया, और उनके गाइडेंस में चलने लगे। बोले, आप मेरी लगाम संभालिये-आप चलाइये। तो जिधर चलाएं, उधर चलने लगे। वही पसंद आ गया। अपने से प्लानिंग बंद हो गई। अब आप जो कुछ करो, सब मुझे मान्य है। आप मेरे रथ को चलाइये। मेरे शरीर को चलाइये। हमें चाहिए के जब थोड़ा अनुराग हमारे हृदय में आ जाय, तो हम अपना अन्तःकरण अपने इष्टदेव को दे दें। और वह हमारा गाइड हो जाय। हमको देखे, हमको समझाए। ऐसा करोगे तो यह होगा, ऐसा करोगे तो यह हो जायगा सब वही बताये। और वही हमारे इन यंत्रों का प्रयोग करे, हम न करें। तो इनमें जो भी चालाकी है, उनसे हम बचे रहेंगे। और जो त्याग करने में समर्थ है, वह सद्गुरु इनसे निपट लेगा। उसके पास वीटो है, क्षमता है। इसलिए उसकी क्षत्र छाया हमको मिलेगी। उसकी क्षत्र छाया में, ये जो हरकत करेंगे, उसका लाभ उसकी दया से हमको मिल जायेगा। यही तरीका महात्मा लोगों ने बताया है। अगर आप यह कहेंगे कि हम समर्पण कैसे करें-जब हमारे ये नहीं हैं। तो आप यही बतायें कि आपके पास है ही क्या? क्या ये हाथ हैं तुम्हारे? ये पैर हैं तुम्हारे, पेट है, पीठ है-क्या है तुम्हारे पास, समर्पण करने को? कि पैसा, रुपया क्या समर्पण करोगे? तो भाई अपने आपको ही सौंप देना है, महापुरुष के हाथों में।

देखो महाभारत में कर्ण भीष्म आदि सब पराभव को प्राप्त हुए। कर्ण, पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, ये सब महान व्यक्ति थे तो भी काल करके, देश करके, बाधित हैं। एकांगी हैं। अर्जुन (अनुराग) एक ऐसा तत्व था जो देश, काल, अबाधित था। वह सार्वभौमिक था। वह समष्टिगत अन्वय व्यतिरेक युक्ति द्वारा चेतन का प्रतिबिम्ब लिये हुए था। और ये सब व्यष्टिगत थे। कर्ण दानी था, इसी बात का ईगो था। उसको वह टाल नहीं सकता, वह कहता, कि भाई ऐसा है, तो मैं इसे दूँगा। एक सजातीय ईगो होता है, एक विजातीय होता है। एक त्याग होता है, एक त्याग का त्याग होता है। एक ज्ञाता होता है, एक विज्ञाता होता है, एक अविज्ञाता होता है। तो इस तरीके से

अज्ञाता, ज्ञाता, विज्ञाता, अविज्ञाता चारकोटियाँ बनती हैं। इसलिए यह ऐसा विषय है, कि उसमें कोई कानून नहीं बनता। कानून-कायदा खंडित हो जाएंगे। कर्ण दानी था-उसमें मर्ज हो चुका था, उसे बड़ा मानता था। पितामह भीष्म भ्रम है। इनके पास इच्छा मृत्यु थी। ये उसमें अकड़े थे, कि हमें कौन मारेगा? हम स्वयं दस हजार सैनिक रोज मारते हैं, तो हमें कौन मारेगा। और द्रोणाचार्य-द्वैत का आचरण। वह इस विषय को समझता ही नहीं। संसारोन्मुख वृत्ति थी उसकी। इसलिए ये तीनों बलवान थे। लेकिन ये सब दोष युक्त थे। अर्जुन एक ऐसा था जो समर्पित था। उसके साथ आत्मा थी, कृष्ण को लिए था वह। उसको भी डिग्री दी गई थी 'धनुर्धर, लेकिन दूसरे कहते थे, वह नहीं कहता था।

समर्पण का मतलब अलग है। गीता में ज्ञान योग कर्मयोग, भक्ति योग आदि कई साधन बताए कृष्ण ने। अन्त में समर्पण के लिए कहा। तो अर्जुन कोई आदमी था - पहले से ऐसा ठीहा न बना लो अपने मन में। अनुराग को अर्जुन कहते हैं। अगर हमारे या तुम्हारे अन्दर अनुराग है परमात्मा के लिए तो हम-तुम भी अर्जुन कहे जाएंगे। और कृष्ण है तुम्हारा गाइड जिसे तुमने समर्पण किया है। परमात्मा किसी व्यक्ति विशेष का नहीं होता। वह सबके लिए है। हर एक से उसकी समान निकटता है समान दूरी है। इस दृष्टि से जब कोई बात साधक के समझ में नहीं आ रही है। वह कई तरह से बता रहा है कि यह डाल पकड़कर चढ़कर आ जाओ - यह भी समझ में नहीं आया। फिर कहा - अच्छा यह रस्सी पकड़ कर चढ़कर आ जाओ - वह भी समझ में नहीं आया। तो जब कोई तरीका नहीं समझ में आया तो अन्त में कहा

'मामेकंशरणं ब्रज'

मेरी शरण में हो जाओ। अब तुम अपना अस्तित्व खतम करो और कह दो कि अब मैं आपका हूँ मेरा मुझमें कुछ नहीं रह गया। अब आप जानें। चाहे नरक में डालें, चाहे स्वर्ग में बैठा दें। मैं कुछ नहीं जानता। अब न मेरा अन्तःकरण मेरा रह गया, मेरा शरीर मेरा नहीं रह गया। सब आपका है। जब ऐसा हो गया - सब इष्ट को सौंप दिया तो उसे कहते है शिष्य। अर्जुन कहता है श्रीकृष्ण से कि -

'शिष्य स्तेहं पाहि मां त्वाम् प्रपन्नः।

'मैं आपका शिष्य हूँ। आपकी शरण में हूँ। मेरी रक्षा करिए।

तब जो उसके समर्पण को स्वीकार करता है - गुरु स्वरूप श्रीकृष्ण को कहना पड़ेगा कि -

'योग क्षेम वहाम्यहं।'

और अगर समर्पण नहीं होगा जिस अंग का उस अंग की रक्षा नहीं कर सकता। इसलिए सम्पूर्ण समर्पण हो। तब फिर वही परमात्मा का रंग उसमें चढ़ जाता है।

इसलिए अर्जुन की ज़रूरत है। हमें इस शरीर को रथ बनाना है, इंद्रियों को घोड़ा बनाना है। और आत्मा को गुरु को, अपना गाइड बनाकर लगाम पकड़ाना है। तो इष्ट के प्रति जो अनुराग है अपना, वह अर्जुन है। उसकी विजय होगी। और करने वाला कोई दूसरा बैठा है। उसने तो लगाम सौंप दी है, उसके हाथ में। और अगर स्वयं करता है। तो फिर ईगो आए बगैर मानेगा नहीं। फिर यह अहिरावण, विभीषण का रूप बनाए बैगर मान नहीं सकता। तो अपने हम मालिक न बने। मालिक बना दें दूसरे को। परमात्मा को। गुरु को। तो फिर कैसे आयेगा। अहंकार अहिरावण, फिर विभीषण का रूप धारण नहीं कर सकता। वह तो हमारी गलती से हुआ–साधक की गलती से। और गलती ही गलती को पैदा करती है। जब हम दुर्गुणी हो जाएंगे, तो दुर्गुण आ जाएंगे। जब सद्गुणी हो जाएंगे, तो सद्गुण आ जाएंगे। इसलिए यह तरीका ठीक नहीं। तरीका यह ठीक है कि– न रहे बांस न बंशी बाजे। हम भगवान को सौंप दें। वह करे, हमारा–हम नहीं करते। यह सबसे अच्छा तरीका है। और फिर अगर बौद्धिक स्तर से कोई तरीका निकालते हैं, तो एक ही तरीका है, कि पहले हम दुर्गुणों को मारें। हम भी धक्का खाएं। इन्हें भी धकियाते चलें। और जब देखें, कि दुर्गुण खतम। तो सद्गुणों की पलटन को बुलाकर बाई नम्बर फालेन करें। और कहें, कि भाई जिस घाट से, ये तुम्हारे दुश्मन उतर कर चले गए, उसी में तुम भी निकल जाओ। अब जब दुश्मन रह नहीं गये, तो मैं पलटन क्यों चराऊँ? क्या जरूरत है तुम्हें भर्ती रखने के लिए, भागो सब। इस तरह से दुर्गुण खतम होते ही, जल्दी से जल्दी सद्गुणों का भी त्याग कर देना चाहिए। यह त्याग का त्याग हो गया। जब, दुर्गुणों को छोड़ा, तो त्याग हुआ, अब सद्गुणों को भी छोड़ दिया, तो त्याग का त्याग हो गया। त्याग का त्याग हो गया, तो सर्कुलेशन से ऊपर उठ जाएंगे। तो फिर इसमें, बीच में आकर हम पिसेंगे नहीं। ऊपर रहेंगे थोड़ा सा। यह बौद्धिक स्तर का साधन है। और वैसे तो अपनी बुद्धि से समर्पण ही ठीक है। भगवान अगर है, तो मनुष्य के अन्दर है। और मनुष्य इतना पागल थोड़े है। मनुष्य झूठ को सही और सही को झूठ बनाता है। लेकिन अपने स्वरूप को नहीं जानता। यह उसमें कमी है। अगर अपने को जान जाय, तो खुद आला–ताला हो सकता है। अपने को नहीं जानता, और अपनी खूबियों को दूसरे से बताने में लगा रहता है। उसका

मूवमेंट (झुकाव) उधर ही रहता है। बाहरी दुनिया की ओर। और यही सबसे बड़ी भूल है। इससे भगवान छूट जाता है। गोस्वामी जी कहते हैं,

याहीते मै हरि ज्ञान गंवायो।

"परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत विकल भयो धायो।"

गीता में भी जगह जगह लिखा है – देहेस्मिन् पुरुषः परः।' और

'ईश्वरः सर्वभूतानाम हृद्देशेर्जुन तिष्ठति।'

इसलिए सही चीज़ बताने पर भी लोग सही की ओर नहीं जाते और सही का गलत अर्थ समझ लेते हैं। गीता के हर अध्याय में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अलग तरीके बताये हैं। अर्जुन तुम इस तरह से यह करो–तुम अब ऐसा करो–ऐसा करो। ज्ञान कहा, कर्म कहा, योग कहा। कई तरह से बताया। लेकिन अठारवें अध्याय में बताया, कि तुम मुझे समर्पण कर दो। फिर मैं देख लूंगा। लेकिन फिर तुम अपना मन लेकर कहो कि हमें वहां जाना है– तो अब तो तुम्हारा सब कुछ तुमने समर्पण कर दिया–अब न तुम्हारा शरीर रह गया, न टंगड़ी रह गई, न मन रह गया। यह समर्पण तो बहुत सोच समझ कर किया जाता है। समर्पण सहज नहीं है। समर्पण बहुत हायर लेबल की डिग्री है। समर्पण जब हो जाता है, तो फिर वह साधक निर्भीक हो जाता है।

समर्पण के बाद जिम्मेवारी भगवान की आ जाती है। जैसे यह जीव है, विषयों में फंसा हुआ। ईश्वर की ओर चला तो एक सीढ़ी चढ़ा, फिर दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवी, छठवीं, सातवीं–सातवीं पर पहुंच गया तो ईश्वर को पा लेता है। ये सीढ़ियां, भूमिका कही जाती हैं। सात भूमिकाएं हैं। शुभेच्छा, सुविचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्था भावनी और तुर्यगा – ये सात भूमिकाएं होती हैं साधना की। शुभेच्छा–उसका नाम है, जब साधक के मन में ईश्वर का भजन करने की इच्छा जागी। और एडमिट हुआ, शुरू में कि हमको ईश्वर का भजन करना है। तो अपने कल्याण की जिसे इच्छा होती है कि ईश्वर को प्राप्त करके इस संसार से मुक्त हो जायं। माया से घृणा होती है, भगवान में लव लगती है। उस शुभ की इच्छा–वह पहली भूमिका है शुभेच्छा।

और दूसरी भूमिका है, कि जब हम इतना ऊपर आ गए कि हमको ईश्वर का अध्ययन करना है, संसार असत्य है, मुझे संसार से मुक्त होना है, (अपना कल्याण करना है)। इस पर अच्छी तरह से विचार करना। सुविचारणा। और तीसरी है तनु–मानसा। मन की सूक्ष्मता में प्रवेश करें। तन यह शरीर और मानस यह मन। दो

हिस्सों में बांट दिया स्थूल, सूक्ष्म। शरीर मकान जैसा है, और मन इसमें रहने वाला जैसा है। मन के अन्दर सद्गुण और दुर्गुण दोनों हैं। मन इनका सदुपयोग-दुरूपयोग कर रहा है। वो दिखाई नहीं पड़ते। तो साधक का काम है कि उनका पता लगाए कि मेरे मन में कौन-कौन सद्गुण-दुर्गुण घुसे हैं। तनु का मतलब है सूक्ष्म। तो अपने मानस की सूक्ष्म गतिविधियों को देखना है। और फिर इसके बाद चौथी आ गई-सत्वापत्ति। अब दुर्गुण और सद्गुण दो बातें आ गई-तो बुराई असत्व और भलाई सत्व। तो बुराई को छोड़े भलाई को पकड़े। सत्व के पक्ष में हो जायं। उसी का पक्ष ग्रहण कर लें। उसी में रहें। असत् का त्याग हो गया।

तो फिर इसके बाद पांचवीं भूमिका आती है-असंसक्ति। जब असत् का त्याग हो गया वह कहीं (मन में) रुकने नहीं पा रहा है, तो सत् बन जाता है-जब कहीं जगह नहीं पा रहा है। जो गलत चीज़ है वह सही के साथ मिली रहेगी, तो उसका पता नहीं चलेगा। सत्वापत्ति में जब हम सत्-असत् को अलग अलग कर देते हैं। तो अलग करते ही असत् नहीं रहता। क्योंकि असत् का कहीं अस्तित्व होता नहीं और सत् का कभी नाश नहीं। इसलिए बुराई ट्रांसफार्म होकर सत्य ही सत्य बन जायगी। तो उसका भी त्याग करके आसक्ति से रहित हो गये। असंसक्ति, अनासक्त हो गये।

फिर पदार्थअभावनी-फिर इसका त्याग कर दे, जो हमें भान हो रहा है कि हम अनासक्त हो गये। इसका अभाव कर दे। पदार्थ, अभावनी। अब पदार्थ-आसक्ति का त्याग कर दे। त्याग का त्याग कर दे। फिर उसके बाद तुर्यगा। तुर्यातीत। ईश्वर का स्वरूप, हो गया। इस प्रकार से महात्माओं के द्वारा ये भूमिकाएं बनाई गई हैं। उन्होंने हम सब लोगों को रास्ता दिखाने के लिए अपने तरीके छोड़ दिये हैं। जो इनको पकड़ कर आगे आ जायेगा, तो उसका कल्याण हो जायेगा। हर साधक को चाहिए, हर भूमिका पर अपने को एडजस्ट करते हुए आगे बढ़ता जाय।

तो यह करने से होगा। साधना बात का बतंगड़ नहीं है, कि तुमने हमको बता दिया, हमने दूसरे को बता दिया, दूसरे ने तीसरे को बता दिया और बस ज्ञान हो जाय। यह थ्योरिटिकल है। ज्ञान ऐसा है, कि जब हम करेंगे तो वही परमात्मा बताने लगता है, वह बोलता है।

'आगे आगे राह देत है, पाछे राखै नीत।
ना हां करै, नहीं ना बोलै, है दोनों के बीच।।'

वह बोलेगा, तुम्हें बताएगा, समझाएगा कि तुम्हें क्या करना है? कैसे करना है? यह गलत हो रहा है, यह सही है। पीछे यह हो चुका है, आगे यह होगा। कल कोई

घटना होने वाली है, तुम होशियार हो जाना। पीछे जो यह घटना हो चुकी है, उसका रिएक्शन, यह आया है। तब जा करके यह अज्ञान का पर्दा हटता है। जन्म्–जन्मान्तर से जो मल, विक्षेप आवरण पर्दे पड़े हैं। तो जब ज्ञान का दीपक जले, तो उसका प्रकाश फिर इन्हें हटाता है। तब ईश्वर समझ में आता है, कि यह ईश्वर ऐसा है। यह ईश्वर त्रिकालदर्शी है। अब तुम भी पारदर्शी बनो। तुम यह शरीर नहीं हो। ये हाथ और पैर गुदा, आंख, पेट, पीठ, सिर ये तुम नहीं हो। तुम भी आकाशवत हो। ह्रदय में है क्या, पोल है। इसी को नभ कहते हैं, नाभि कहते हैं। नभ–नाभि। यहाँ पोल है तो आवाज आएगी, ठोस में तो आएगी नहीं। जानते हो यह आकाश कब से खड़ा हुआ है। अरबों–लाखों साल से यह पृथ्वी है। उसके भी पहले से यह आकाश खडा है। वह सबको देख रहा है। हजार साल पहले क्या क्या हुआ यह जानता है। और दस साल पहले क्या–क्या घटना हुई, यह भी जानता है। इसके कम्प्यूटर में सब भरा हुआ है। आकाश बन जाओ तुम। तो फिर आकाश जब तुम बन जाओगे। आकाश से भी सूक्ष्म है तुम्हारा स्वरूप। तो जब ऐसा तत्व तुम बन जाओगे तो पारदर्शी हो जाओगे – कम्यूनिकेशन होने लगेगा। फिर तुम्हें वो बातें आ जायेंगी कि–

'यथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल बन भूतल भूरि निधान।। और,
'जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहू न समाय।
सो सब मैं तहं देखेऊं बरनि कवन विधि जाय।।'

इसको बता भी नहीं सकते। उसे छोड़ा भी नहीं जा सकता। ऐसे–ऐसे चमत्कार आते हैं, ऐसे–ऐसे चमत्कार दिखाई पड़ते हैं। कभी जनरल घटनाएं आ जाती हैं, कभी सार्वभौमिक घटनाएं आएंगी। कभी दूसरे व्यक्तियों की घटनाएं आएंगी। दुनिया में क्या घटना घटने वाली है, जनरल प्रश्न आ जाएंगे। यह तो मीटर है, जो दबा दो वही आ जायेगा। लेकिन इच्छा नहीं करना चाहिए। अनपेक्ष ही रहना चाहिए। क्योंकि परमात्मा अपने में किसी को मिलाता है, तो अपनी औकात नहीं देता। परमात्मा अपने में मिला ज़रूर लेता है, लेकिन अपनी ताकत को असीम ताकत को उसे बताता नहीं। समुद्र में जो जाता है, वह तैरते–तैरते मर जाता है, समुद्र की गहराई को नहीं जानता है। लेकिन उसमें लीन हो जाता है, और अपनी योग्यता के अनुसार जान पाता है। इसलिए कुछ मर्यादा है। पर्सनल रूप में, नहीं समझ सकते उसको। वही समझाए, तो समझ सकते हैं।

इस तरीके से प्रार्थना अपने इष्टदेव से निरंतर करो–हमारा मन उधर न जाकर विषय की तरफ चला गया, बुराई की तरफ चला गया, विजातीय की तरफ चला गया, अविद्या की तरफ चला गया। उसके लिये प्रार्थना करो, क्षमा याचना करो–यह मेरी गलती है। भगवान की कभी गलती नहीं सिद्ध करनीचाहिए। अगर तुम्हारी तरह से, सब भगवान के ऊपर डालोगे, तो तुम्हारा साधन पिट जायगा। गलती जो हो वह अपनी माने, और जो लाभ हो, वह भगवान का माने, यह तरीका अच्छा है। इसमें ईगो से बचत रहेगी। और साधक निरंतर लाभ उठा सकता है। यह सब बुद्धि का खेल है। कैसे एडजस्टिंग करना है। इसलिए सुदामा बन जाओ। यह जो शरीर है, इसमें जो ईश्वर का अंश है (जीव) वह सुदामा है, भगवान का प्रेमी है, भगवान का साथी है। भगवान का भाई है, भगवान का अंश है, और क्लासफेलो भी है। लेकिन परबस होने से काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर इनके वसीभूत होने से, उसकी–यह कंडीशन हो गई है, कि एक–एक दाना–दाना को भटक रहा है। और जीव की जो इनर्जी है, ताकत है, शक्ति है, भक्ति है उससे वैसा लालच दिखाकर बुरा काम करना चाहता है। यह कहानी सुनी देखी होगी। उसकी पत्नी कहती है अरे जाओ भगवान के पास नहीं तो मर जाओगे। तो वह रोता है, कैसे जाऊं मेरे पास तो कुछ नहीं है। तो संसार में नाना प्रकार की अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये जीव अपनी इनर्जी का उपयोग करता है। तब वही आत्मा परवश हो जाती है। फिर काम, क्रोध, लोभ, मोह उसे मार–मार हलुआ बना देते हैं। वह ईश्वर का अंश जो अविनाशी है और –

'चेतन अमल सहज सुखरासी' है,

'सो मायावस परेउ गोसाई। बंध्यो कीर मर्कट की नाई।।'

तो उसकी शक्ति और उसकी भक्ति (इसकी पत्नी) कहती है कि जाओ, वहीं तुम्हारी दरिद्रता दूर होगी, लेकिन उसकी हिम्मत नहीं पड़ती। भगवान तो कहते हैं,

'सन्मुख होय जीव मोहिं जबहीं। जन्मकोटि अघ नासउं तबहीं।।'

सन्मुख कैसे हो? सन्मुख है, वह काम, क्रोध के। तो भगवान के सम्मुख होने में तो दिक्कत जा रही है। और जब चल देता है। तो स्वरूप में समाहित हो जाता है। तो सिद्धांत क्या कहता है,

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंचित जगात्यांजगत्।'

ईश्वर सर्वत्र है, हर जगह है। वह काल करके देश करके अबाधित है। पहले था अब नहीं है, यह उसमें नहीं होता। वह पहले भी था, अब भी है, आगे भी रहेगा। काल करके बाधित नहीं होता, ईश्वर। वह सर्वत्र है–यह सिद्धान्त है। और अगर कृष्ण

को तुम द्वापर का मानते हो, तो अब नहीं है–यह काल करके बाधित होने का दोष आता है। इसलिए ऐसा दोष नहीं आना चाहिए। तो फिर ऐसा कौन तरीका है, कि ऐसा दोष न आए। वह निरवयव का तरीका है। भगवान (कृष्ण) कहां हुए? ब्रज में हुये। विरज किसको कहते हैं– रज और वीर्य इन दोनों से जो रहित स्थान है, उसे कहते हैं विरज। उस जगह आता है भगवान। न स्त्री लिंग न पुरुष लिंग– ऐसा स्थान है अन्तःकरण। वहां क्या है? मन रूपी मथुरा है, ब्रह्मज्ञान रूपी वृंदावन है। कंठ्कूप से, श्वासा जब सम होती है, तो अमृत बरसता है–यह बरसाना है। नियम नंद गांव है। ये चार गांव, निज धाम यह अंतःकरण है– यहाँ पैदा होते हैं। नियम माने नंद बाबा के यहाँ, जसोमति माने जस को प्राप्त होने वाली भक्ति के यहाँ पले। और पैदा कहाँ हुये, कर्म रूपी कंस के कारागृह में। कर्म इस शरीर से होता है। इसी के अन्दर अंतःकरण में पैदा होते हैं। ध्यान रूपी देवकी और वसुदेव जो सब में बसा है। उसमें, जब ध्यान लग गया। कारागृह में इसी काया के अन्दर प्रादुर्भूतहोते हैं।

'गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु।'

गुप्तरूप से अन्दर ही अन्दर ईश्वर का प्रादुर्भाव हो जाता है। इस तरीके से जो सत्संग यहां बताया जाता है, वह क्रियात्मक है, करने के लिए है।

अब सत्संग तो रोज करते हैं लोग, लेकिन सत्संग ऐसे नहीं होता। सत् का संग ही सत्संग है। सही सत्संग कराने वाले संत सद्गुरु विरले ही होते हैं। सच्चे जिज्ञासु सत्संग करने वाले लोग भी कोई कोई हैं। और आज जो यह जगह–जगह हो रहा है सत्संग के नाम पर, इसे सत्संग नहीं कहते। यह तो सत्संग शब्द का दुरुपयोग है। लोगों की हैविट बन गयी है, सुनते चले जा रहे हैं। आज भक्ति और धर्म के नाम पर जितनी अधिक गतिविधियां समाज में हो रही हैं, जितनी बड़ी तादाद में लोग इससे जुड़े हैं, शायद है कि पहले कभी ऐसा हुआ हो। लेकिन समाज में कोई सुधार देखने को मिल नहीं रहा। पापाचार दिनों दिन बढ़ रहा है, मानवता का नामोंनिशान मिटता चला जा रहा है। क्योंकि सब भटक गये हैं। सही चीज को, धर्म के रहस्य को, सत्य सिद्धांत को जानते नहीं, जानना चाहते नहीं। वही कबीर वाली बात है कि,

'उधर से अन्धा आवता, इधर से अन्धा जाय।
अन्धे को अन्धा मिला, रस्ता कौन बताय।।'

तो कैसे काम चलेगा? रास्ता तो वही बतायेगा जो दृष्टिवान हो। जिसने रास्ता चलकर देखा हो। तुलसीदास ने रास्ते को चलकर देखा था। एक संत सदगुरु की

उंगली पकड़कर चले थे इस मार्ग पर। इसलिए उन्होने अपनी कविता के द्वारा परमात्म पथ की जानकारी दी है। लेकिन उस रास्ते को पकड़ते नहीं लोग, कथा वार्ता के रूप में अपना मनोरंजन करते हैं। मेरे विचार से रामचरित मानस के कहने सुनने वालों की एक कसौटी निर्धारित कर दी है गोस्वामी जी ने,

'जे श्रद्धा संबल रहित, नहिं संतन कर साथ।
तिन कहुं मानस अगम अति, जिनहिं न प्रिय रघुनाथ।।'

तीन बातें हैं– श्रद्धा, संत का संग और भगवान का प्रेम। ये अगर हों, तो मानस समझ में आ सकता है। नहीं तो फिर अगम हो जायगा। हम कहते हैं कि आज कल बड़े विद्वान जो तुलसीदास को समझने में लगे हैं, उन्हें इस बात पर भी शोध करना चाहिए कि उन्होने अपने इस ग्रंथ को रामायण न कहकर रामचरित मानस नाम क्यों दिया है? मेरे विचार से यह मानस है, मानस (अंतःकरण) की बातें हैं इसमे। तो इस तरह से यह आध्यात्मिक विषय है। मानस में अवगाहन करना पड़ेगा। मानस में राम के चरित ढालना पड़ेगा।

देखिए, जब हमारी दसों इन्द्रियां विषय उन्मुख रहती हैं तब दशानन बन जाता है हमारे अन्दर। तब यह शरीर लंका बन जाता है। जब इन्द्रियां विषय उन्मुखता छोडकर ईश्वरीय क्षेत्र में काम करने लगती हैं, तब यहीं इसी शरीर के अन्दर दशरथ तैयार हो जाता है। फिर यह शरीर अयोध्या कहा जा सकताहै। साधना बन जाती है तो यहीं राम पैदा हो जाता है। फिर पूरा राम चरित होगा इस मानस में। तो अगर कुछ करना चाहे आदमी तो इसे ऐसे समझना पड़ेगा। साधना करनी है अगर, परमात्मा के लिए अनुराग है जिसके अन्दर, उसे यह मानस का बोध करना चाहिए। यदि पूर्व जन्मों में पुण्यों की कमाई है तो कोई संत मिल जाते हैं, कल्याण का रास्ता बता देते हैं। बाहर बाहर रावण और दशरथ की कहानी से मामला हल नहीं होगा। रावण या दशरथ कोई आदमी नहीं हैं। अभी माया के क्षेत्र में हमारा मन काम कर रहा है तो हमारे अन्दर बुराई का अध्यक्ष बनकर रावण बैठा हुआ है। जब मन इन्द्रियां उधर भगवान के क्षेत्र में काम करने लगते हैं तब उसी हृदय की कुर्सी पर रावण को हटाकर दशरथ बैठ जाता है, राम बैठ जाता है। मूलतः थ्योरी इतनी है, इसे ठीक से समझा जाय और किया जाय।

'मेरे सतगुरु दियो है बताय, दलाली लालन की।
सबके पल्ले लाल है, सबही साहूकार।
गांठ खोल परखा नहीं, या विधि हो गई हार।।

दलाली लालन की।।'

सद्गुरु ही बताते हैं,लाल अर्थात रत्न जो परमात्मा है उसको प्राप्त करने की कला। यह परमात्मा रूपी रत्न सभी के अन्दर बैठा है–सब उर पुर बासी है। सबके शरीरों में आत्मा रूप में विराजमान है। लेकिन मन की गांठ खोल नहीं पाते । पदार्थों में, विषयों में जो मन की आसक्ति लगी है,उस गांठ को खोल नही पाते, इसलिए दुर्गति को प्राप्त हो रहे हैं। अगर यह आसक्ति की गांठ खुल जाय तो वह लाल (परमात्मा) मिल जाय। मन को संसार से मोड़कर ईश्वर में लगाना है। तो सत का संग ही सत्संग है।

''सत्य वस्तु है आत्मा, मिथ्या जगत पसार।
नित्यानित्य विवेकिया लीजै बात विचार।।''

तो सत्य क्या है। घूमकर अन्दर आना पड़ेगा। अपनी आत्मा, अपने को छोड़कर दूसरे को सत्य नहीं कह सकती। यह संसार दृश्य है– असत् है। आत्मा द्रष्टा है। जब दृश्य का रूपान्तर होकर, द्रष्टा में विलीन हो जाय, और द्रष्टा ही द्रष्टा शेष रह जाता है– उसको आत्मा कहते हैं। उसको परमात्मा कहते हैं। उसी सत्य का संग सत्संग है। लेकिन प्रारम्भिक सत्संग का मतलब है अच्छे का संग। सत्पुरुषों का संग, अच्छाई के साथ रहना। सजातीय विचारों को लेना। सत्संग सबसे बड़ी चीज़ मानी गयी है– शास्त्रों में। इसलिए, सत्संग का मतलब होता है कि हर बात हमारे दिमाग से गुजरे। और उनमें से सही बातों को लेने का अभ्यास करें। ईश्वरीय धर्म की जानकारी करें। रगड़ते–रगड़ते–रगड़ते उसकी जानकारी आ जाती है। तो फिर ये कृष्ण जो हैं, वो अनायास नहीं आ पाते। वो फंस जाते हैं–कहीं न कहीं, नुक्कड़ में। वहीं आते हैं नपे तुले, जो किसी की पकड़ में न आये। और जो सत्संग ज्यादा नहीं किये हैं, जो रगड़े–रगड़ाए नहीं हैं, उनके यहाँ कृष्ण कैसे आ जायेगें? जब सच्चा सजातीय पार्टी का हो जाता है, राम की पार्टी का। तो अगर एक संकल्प आ जाय राम का, तो चारों तरफ राम ही राम छा जायेगा। और हर चीज़ में राम आ जायेगा। जैसे रावण के दिमाग में रावण आ गया था। तो इसका कोई दूसरा उपाय नहीं है–एक ही उपाय है कि हम अपने विचारों को बदल डालें। हम सजातीय क्षेत्र के संस्कारों में गुजर करें। और उसी का सब कुछ करें।

अब तुमको यह शंका है, कि ये भूत पटक कर कभी मार देंगे–इसमें रहते हुए। तो ऐसा नहीं होता। यह तुम्हारी थ्योरिटिकल शंका है। जब तुम प्रैक्टिकली इसमें आ जाओगे, तो तुम्हारे पास ऐसा वीटो आ जायगा, कि फिर उनका पता ही नहीं चलेगा।

अगर रावण दिखाई देगा, तो सजातीय बनकर दिखाई देगा। अगर कुंभकरण दिखाई देगा–क्रोध हमको आएगा–तो फायदा के लिए आयेगा। काम अगर आएगा, तो भगवान का अवतार हो जायेगा। मोह अगर आयेगा, तो देश का कल्याण हो जायेगा। लोभ अगर आ जायेगा, तो समाज प्रगति कर जायगा। बुराई नहीं हो सकती, फिर ऐसा हो जाता है। वही महात्मा बनेगा वही साधक बनेगा। दूसरा तो बनेगा नहीं। महात्मा की डिग्री तक कौन जायगा–उसकी पहचान है। चाहे हम हों, चाहे तुम हो, चाहे कोई हो। जब दीक्षान्त भाषण हो जाता है, और डिग्री मिल जाती है, तब उसका दूसरा रूप बन जाता है। और जब तक पढ़ रहा है तो चाहे प्राइमरी का पढ़ैया हो, चाहे पी.एच.डी. का हो–तब तक वह स्टूडेंट ही है। और जब डिग्री ले लिया, तो सारे प्रोफेसर उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं। मास्टर आफ आर्ट्स हो गया। मास्टर आफ साइंस हो गया। उसके पास विशेषाधिकार हो जाता है, बहुत बड़ा वीटो आ जाता है। आज तुम जो सोच रहे हो, इस अधीन मन से बात कर रहे हो, जो टिकाए नहीं टिकता, एक जगह। इसलिए समझ में नहीं आता। फिर तो मन इतना सबल हो जाता है कि बुरी से बुरी चीज़ को भली बना लेता है। यह इसके पास युक्ति आ जायगी। इसके पास शक्ति आ जायगी। गलत काम हो गया–गलत को भी सही बना लेगा। वीटो–विल पावर आ जायगा।

हाँ, अगर ऐसी युक्ति यह समझ में आई, बस तेजी आ गयी, बुद्धि में प्रकाश आ गया, ज्ञान आ गया। सब बदल गया। गलत काम हो गया–कोई बात नहीं, क्षमा हो गया, सही बन जायगा।

फिर वह जो करेगा, सही हो जायेगा। अन्तर्जगत पार्लियामेन्ट से दीक्षान्त भाषण हो जाना चाहिए। टाइटल मिल जाना चाहिए। डिग्री मिल जाना चाहिए। दीक्षान्त समारोह में डिग्री मिलती है। बस, रावण आवे चाहे उसका बाप आवे। वह भी ठीक है, वह भी ठीक है। जैसे अभी है क्या कोई रावण के अलावा? राम का, अन्दर कुछ है नहीं, रावण ही रावण भरा है। राम को पकड़ा जा रहा है–राम आ नहीं रहा है। रावण का माहौल चारों तरफ से घेरे हैं। बस ऐसे ही हो जाता है। जब आप ग्रेविटी (गुरुत्वक्षेत्र) पार कर लेंगे, तो राम का माहौल आ जायेगा। रावण का कहीं पता नहीं रहेगा। जैसे अभी राम का नहीं आ रहा है। जब माया के क्षेत्र में हैं, तो राम का नाम लेने में भी मन नहीं लगता। आसक्ति लगी है। राम की तरफ मन को धकाते हो–विषय की तरफ दौड़ता है। ईर्ष्या की तरफ दौड़ता है। विरोध की तरफ दौड़ता है। ऐसे ही, जब साधक के दिल दिमाग में समझ आ जायेगी और राम ही राम हो जायेगा। तो बस इस मन में जो कुछ भी आएगा, राम का ही आयेगा। फिर रावण

नहीं आएगा। फिर कोई डर नहीं। हम बार-बार कहते हैं। फिर सोते हुए सोने के संस्कार नहीं पड़ते, खाते हुए खाने के संस्कार नहीं पड़ते। इसलिए वह बोलते हुए बोलता नहीं, खाते हुए खाता नहीं, चलते हुए चलता नहीं। और वही सब में व्यापक है। अणु अर्थात् सबसे छोटा है, और वही सबसे बड़ा है, वही सब में व्यापक है। तो अणु रूप में तो हम उसे पकड़ रहे हैं, और जब इन्लार्जमेंट (विस्तार) कर देंगे, तो व्यापक बन जायेगा। इसलिए सत् को पकड़ो। ईश्वर को अपने में ले लो।

आदमी जो भी कर्म करता है, चाहे भले करे, चाहे बुरे करे, वो सब जमा होते जाते हैं। संचित जो जमा हो गये। करता जाता है रोज, कन्टीन्यू, वो जमा होते जाते हैं-और वह जो सबसे पुराने वाले हैं वह प्रारब्ध बन जाता है। और फिर करने में आ जाता है, उसकी प्रेरणा बुद्धि में आ जाती है। इस समय जो प्रेजेन्ट में हम कर्म करते हैं- उसमें वनथर्ड भाग ले लेता है, यह प्रारब्ध। तो ऐसी एक रील बन गयी। वह भोगने में आ रही है, करने में आ रही है। बस यह है संसार। यही है दुनिया, और कुछ नहीं है। वर्तमान का क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध में परिणत होता चला जाता है। अब जब हमको भजन करना है। तो जो कुछ भी करना है, उसको अपने हाथ में ले लेना चाहिए। वर्तमान में कभी गलती नहीं करना चाहिए। गुरु के बताए हुए रास्ते पर ही चलना चाहिए। शरीर से सेवा हो निष्काम भाव से, मन से भजन हो निष्काम भाव से, और गलत काम न करें। इच्छाएं नष्ट हो जायं। इच्छाओं का दमन कर देना चाहिए। तो तुम कहोगे यह सब कैसे होगा? तो धीरे-धीरे करो। धीरे-धीरे अभ्यास करो, धीरे-धीरे कर्तव्य करो। लोभ न हो, मोह न हो। आशा, तृष्णा, विषय वासना, बेईमानी, बदमाशी, झूठ, कपट ये सब हमें त्याग कर देना है। ज्ञान, विवेक, वैराग्य इन्हें लेना है। इच्छा रहित रहना है। संतोष करना है। इस प्रकार की नीति से जो चलता है, तो जो वर्तमान में कर्तव्य हो रहा है, उसे वह सुधार लेगा। अब भजन शुरु किया। अब बुरे काम वह कर नहीं रहा, और भले काम करता जा रहा है। तो जो जमा होने वाली प्रक्रिया है, उसमें भले ही जमा होते जाएंगे। जब बुरे हम करते नहीं, तो अच्छे ही अच्छे जमा होते जायेंगे। इसलिए जब दीर्घकाल तक मन को भजन में लगाए रहेंगे। मन को विषय की तरफ नहीं जाने देंगे-भजन में ही लगाये रहेंगे। तो अनेक जन्म पर्यन्त-'जनम जनम लगि रगर हमारी।, ''जनम जनम मुनि जतन कराही'। तो इस तरह से हमें कोई गाली दे रहा है- हम नहीं बोलेंगे। हमें कोई भला बुरा कहता है, हम नहीं बोलेंगे।

'बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे।।'

तो जो हम प्रेजेन्ट में करते जा रहे हैं सजातीय कर्म, विजातीय वाले तो हो नहीं रहे। माया वाले तो हो नहीं रहे, ईश्वरीय हो रहे हैं। ईश्वर वाले करेंगे–तो ईश्वर मिलेगा और जब माया वाले करेंगे, तो माया मिलेगी। तो जब प्रेजेंट सुधर गया, तो फिर संचित जो हमारा है, वह भी भगवान के कर्तव्य वाला हो गया। वह भी सुधर गया। और जो पहले का खराब जमा है संचित, वह धीरे–धीरे (प्रारब्ध भोग से) चुक रहा है। वह जो पहले का भरा हुआ है, वह धीरे–धीरे खतम हो रहा है। वह प्रारब्ध हमारा प्रेजेन्ट में हमको डिस्टर्व (ब्यवधान) डाल रहा है, और हम मानते नहीं हैं। और वह एक–तिहाई आता है, हमको विषयों में डाल रहा है, और हम जाते नहीं हैं विषयों में, और हम बरबस सुधार किये हैं। हमारे हाथों में बस यही प्रेजेन्ट का कर्तव्य ही तो है, और कुछ है नहीं। इसलिए जब हम इस साधना में लग जाते हैं, तो फिर संचित पूरे सजातीय कर्मों से भर जाता है। अब आप यह शंका कर सकते हैं, कि वह जो बुराई वाला प्रारब्ध जमा था, और वर्तमान में आता है, तो वह क्या करता है? तो वह हमारी बुद्धि को नष्ट करता है। लेकिन दो हिस्सा हमारा अच्छा है, और एक हिस्सा आता है–इसलिए क्या करेगा? व्याधि डाल सकता है, स्त्यान डाल सकता है, अविश्वास डाल सकता है, चोरी करा सकता है, झूठ करा सकता है–ऐसे विक्षेप डाल सकता है। और उन विक्षेपों को हमें सहन करना है। हमें कहना है, कि भाई चाहे जो आए, हमें डटे रहना है। हमको चाहे कितना भी कष्ट मिले, लेकिन हम हटेंगे नहीं। तो इन सबको सहन करते हुए, दृढ़ विश्वास से साधना में लगे रहना चाहिए।

जो कर्तव्य है–भक्ति या भजन में या साधना में भी प्रारब्ध ही डालता है। इसी को कहीं प्रारब्ध कहा गया है, कहीं ईश्वरीय विधान कहा गया है। अलग–अलग सिद्धान्त हैं, मुनियों के। इस तरीके से जो आएगा उसको हम सहन करते जाएंगे। मान लिया किसी ने बहुत बुरा काम चोरी किया, वह जमा होगा तो वह सामने आ सकता है। उसमें बहुत बड़ी खराबी आ सकती है। जैसे हमने कभी बताया होगा, कि एक महात्मा थे नगवा के परमहंस, एक दारागंज के परमहंस, एक अजना के परमहंस तीनों बड़े अच्छे महात्मा थे। पब्लिक बहुत मानती थी। तो ये जो अजना वाले थे, ये पहले पशु चराते थे। ब्रह्माण्ड में वाणी हुई, तो निकल पड़े। सब छोड़ छाड़कर निकल पड़े। हाथ में लाठी लिए रहते थे। कपड़ा–अपड़ा जो थे, छोड़ कर भाग दिये। तो जाकर वहीं–अजना में बैठ गए। सरजू का बहुत बड़ा घाट है, और रेता ही रेता है 4–6 किमी. का। वहीं रेता में बीच में बैठ गए। फिर कम से कम 60–70 साल बैठे रहे। हमेशा–कपड़े नहीं पहनते थे–नंगे। न किसी से बोलते थे, और न कोई

मतलब। एक लकड़ी लेकर एक जगह गाड़ देते थे–उसमें एक झंडी बांध देते थे। और कोई अगर लकड़ी गिरा देता तो उसे गाली देते थे, कि तुमने हमारी डंडी क्यों गिरा दी। रख आठ आना पैसा, यह जुर्म है। आठ आना पैसा–एक पंडित आता था उनके पास–वह उठाकर ले जाय, भोजन सामग्री लाए और बना कर खिलाये। वे अपने हाथ से खाते नहीं थे। पंडित उन्हें खिलाये, खुद भी खाए। बस ऐसे–ऐसे बहुत दिन बीते। बड़ा भारी शरीर था–काला एकदम हाथी जैसा शरीर था। वो लाठी जो शुरू की थी, उसको पकड़े रहते थे। उसमें उंगलियों के निशान जैसे गड्ढे पड़ गये। एक ही जगह बैठे रहे। न गर्मी में कभी छाया बनायी, न बरसात में छानी छवाए न छप्पर, न सर्दी में आग जलवाए, न वहाँ से हटे। ऐसे महात्मा थे। तो उनके साथ क्या व्यवहार हुआ, सुनो।

प्रारब्ध क्या–क्या करता है–यह हम बता रहे हैं। इतने निर्लेप जो महात्मा थे। 70 साल एक जगह बैठे रहे, और उनके साथ बड़ा दुर्व्यवहार हुआ। हुआ क्या कि गांवों में गरीब–अमीर रहते ही हैं। बहुत से अहीर थे गरीब और बाबू लोग जमींदार थे। तो गरीब आदमी ऋण लेते थे। जमींदार एक हजार का पचास हजार बनाकर वसूल करते। वो बेचारे कमाते–कमाते कर्जा भर न पावें, तो उन्हीं के जूता सिलते, उन्हीं की नौकरी करते रहते थे। तो हुआ क्या, कि एक पंडित जो आता था, वह सबेरे चार बजे आ जाय, एक मुखारी लेकर। अपने हांथ से मुखारी कराता था, मुंह धुला देता था। इतने बीच में कोई आ जाय, लकड़ी गिराए, बाबा उसे गाली दे। वह आठ आना पैसा दे। पंडित पैसा लेकर बाजार जाय, सामान लाये, खाना बनाए, अपना खाय और बाबा जी को खिलाये। बस, इतना होते–होते बहुत दिन बीत गये और पंडित बुड्ढा हो गया। तो एक दिन बाबा जी से रोया और कहा, कि मेरा भी कर्जा पड़ा है, ज़मींदार का। और मैं चुका नहीं पाया कभी। पंडित बेचारा रोया–गाया, कह डाला। तो बोले, अच्छा जा तेरे घर में दूसरी डेहरी के नीचे खोद ले, और जो निकले उससे चुका दे सब करजा। गया, खोदा, तो खूब माल–टाल निकला। तो पंडित डलिया में भरकर पूरे गांव में घूमा, कि भाई जिसका कर्जा मेरे ऊपर हो वह अपना ले सकता है। तो दस रूपया अगर बताया, तो पंडित ने सौ ýपया दिया। गांव में हल्ला मचगया, कि इतना धन पंडित को कहाँ से आ गया? चर्चा हो गयी, कि बाबा की सेवा किया, बाबा ने सब कुछ किया।

हो गया, महीना पंद्रह दिन में गांव के चार अहीर कर्जा में दबे हुए, गरीब, आए रात को 12 बजे, बाबा के पास। बोले महाराज हमको भी कुछ दे दिया जाय, हमारा भी कर्जा पट जाय। हम बहुत गरीब आदमी हैं। बाबा जी ने कहा, भाई मेरे

पास तो है नहीं। तो वो लोग बोले, महाराज जैसे पंडित को बताए हैं वैसे हमें भी बता दें। कहीं घर में, गली में, सार में, गड़ा हो तो हम भी कर्जा से मुक्त हो जायें। तो कहा कि भाई बड़ा मुश्किल है–तेरे यहां नहीं है, तो कहां बताएं? तो फिर वो बोले नहीं महाराज! आप भगवान हैं, दया कर दीजिए। भारी मुश्किल कर दिये। सबेरे चार बज गये। तो फिर बाबा ने कहा, कि देखो, एक युक्ति बतावें। जहां मैं बैठा हूँ, यहाँ बहुत सा धन गड़ा है। तो यह सोना तुम्हें तब मिलेगा, जब मैं न रहूँगा। तो ऐसा करो कि तुम अपनी लाठियाँ, मेरी गर्दन में आगे पीछे लगाओ। और दोनों ओर से पकड़कर दो दो आदमी जोर से दबाओ। और मेरी श्वासा देखते जाना, जब बंद हो जाय तो उठाकर सरजू में फेंक देना और सोना निकाल लेना। ले जाकर सबको बांट देना। तो बोले महाराज ऐसा न कहिए। तो बाबा ने कहा, और कोई उपाय नहीं है। यही आखिरी तरीका है। वो बहुत कहे, आखिर में बोले कि फिर जैसा कहो महराज! अपढ़ के कितनी बुद्धि! लगाए लाठी। बाबा लेट गए। दबाए जोर से। दबाए तो बाबा ने कहा–ये पापी प्राण हैं, जल्दी छोड़ नहीं रहे हैं–अच्छा इधर से दबाओ। दबाएं, फिर देखें, श्वासा चल रही है, इधर से दबावें, उधर से दबावें, खूब जोर लगाए। इतने में सुबह हो गयी–पंडित आ गया, तो शोर मचा दिया। अब गांव में हल्ला मच गया, भीड़ टूट पड़ी, अहीरों को मार जूतों, पार कर दिये। बाबा जी के गले में लाठी चिपक गई थी, और अहीरों के हाथ लाठी में चिपक गये थे। इसलिए भाग भी नहीं सके। खूब मार पड़ी। तब बाबा जी खड़े हुए, और गांव वालों को मना किया, कि इन्हें मत मारो। यह तो मेरे ही कहने से किया है, इन्हें मत मारो। इनका दोष नहीं है। पब्लिक मारे पड़ी थी। बाबा चिल्लाए, कि अरे भाई! इन्हें न मारो, इनका दोष नहीं है। मेरी बात तो सुनो! कहा–देखो, पूर्व जन्म में ऐसे ही लाठी लगाकर मैने एक आदमी को मारा था, वही मेरे प्रारब्ध में बैठा रहा है। तो मैं भजन करने से बच गया हूँ, नहीं तो मर ही गया होता। तो यह मेरा प्रारब्ध है। इसलिए यह हमारा दोष है। खबरदार! इन्हें न मारो। तो लोग मान गए। लाठी हटाए।

तो इस प्रकार उनका पूर्व जन्म का अपराध, प्रारब्ध बनकर आया। भजन का प्रभाव था, कि बच गये, नहीं तो मर जाते। भजन से प्रारब्ध भोग, कुछ हल्का हो गया। फिर बाबा बहुत दिनों तक जीवित रहे, बाद में मरे। तो इस प्रकार यह प्रारब्ध चलता है। कुछ महात्माओं का मत है कि प्रारब्ध चलता रहता है, क्रियमाण और संचित ये सुधर जाते हैं। प्रारब्ध तब ठीक हो जाते हैं जब यह प्रक्रिया पकड़ में आ जाय, जो हम बताते हैं। क्रियमाण सही हो जाय तो साधक निकल जाता है। तो फिर साधक लौटता नहीं है। उसे चस्का लग जाता है। भगवान उसे अट्रैक्शन (आकर्षण)

देने लगता है। उठाता रहता है। फिर उसको मदद करता है। फिर संचित सुधरने लगता है। प्रारब्ध रह जाता है, तो वह भोगने में आता जाता है। और यह सब कर्म चक्र काफी समय तक चलता है। और जब धीरे-धीरे तीनों से निवृत्त हो जाता है, तब फिर मुक्त हो जाता है। प्रारब्ध तो आते चले जाएंगे, वह तो नियम है। जैसे माला में यहगुरिया आएगी, फिर यह गुरिया, फिर यह गुरिया। प्रारब्ध कोई बैठा नहीं रहेगा, टाइम लग सकता है।

हां तो देखो, जब राम ने अपने सहयोगियों (साधनों) के द्वारा रावण के अनेक पुत्रों को नष्ट कर दिया, भाइयों को नष्ट कर दिया, तो यह स्वाभाविक है कि जिस साधक के अंतःकरण में यह प्रक्रिया हो रही है, उसके अंदर एक ईगो आएगा ही कि हमने काफी कुछ कर लिया है अब मंजिल थोड़ी दूर ही तो रह गई है। हम बहुत आगे बढ़ गये। यह जो ईगो है, वही अहिरावण है। वह एक ही है-दो बन जाते हैं। गलत अहंकार विजातीय बन जाता है, सही अहं सजातीय बन जाता है। यह न सजातीय है, न विजातीय, आटोमैटिक है। जो बुद्धि में नहीं आता, जो समझ में नहीं आता, जो तरीके से नहीं हल होता, उसे आटोमैटिक कहते हैं। तो उसको निमंत्रण दिया गया। निमंत्रण दिया जाता है, तो दुर्गुण आता है। साधक ही निंमत्रण देने वाला है। उसी के निमंत्रण देने पर, सद्गुण या दुर्गुण आते हैं। दूसरा कोई है नहीं। हां, इस हिसाब से चले तो हल मिल जायेगा। नटबोल्ट बैठते जाएंगे। नटबोल्ट कसते चले जायेंगे।

वह (आत्मा) बुद्धि से परे है, मन से परे है, अन्तःकरण से परे है। सत, रज, तम तीनों गुणों से परे है। इसलिए उसका जो कांस्टीट्यूशन (संविधान) है, वह समझ में नहीं आता है। अगर तुम उसे बुद्धि के क्षेत्र में लेते हो, तो वह सरक कर निकल जायगी। और अगर ले लो, तो वह असली नहीं रह जायगी-कांच की मणि बन जायगी, वह हमारे अन्तःकरण मन बुद्धि से अलग हो जाती है। हम मन बुद्धि अंतःकरण से एक सीमा तक पहुंचते हैं। फिर जब हम इन्हें समर्पित करके गायब कर देते हैं, और जब हमारी डेथ हो जाती है अहम के स्तर पर, तब फिर वह हमें मिल जाता है।

'आपा मेटि जीवत मरै तो पावै करतार।'

तब उसी की बुद्धि से उसी को समझना पड़ता है। इसलिए न अहिरावण का महत्व है, न रावण का महत्व है, न राम का महत्व है। तो यह विचित्र सराय है। इसलिए यह समझ में नहीं आते हैं। जब हम समझते हैं अपने स्तर से, कि भगवान

को हमने पकड़ लिया–पकड़ लिया, तो कांच की मणि रह जायगी–असली मणि निकल जायगी। इसलिए यह बुद्धि से नहीं समझा जा सकता, वह तो सेल्फ रिएलाइजशन, आत्मानुभूति से ही समझा जायेगा।

हम जानते हुए दुर्गुणों को बुलाते हैं। जब हमें कोई लाभ होता है, भगवान की ओर हमारी प्रगति होती है, कुछ अन्तर्जगत से ऐसी अनुभूतियाँ हमें मिलती हैं। तो हमें खुशी मिलती है। तो जानते हो, उसी खुशी के साथ–साथ ईगो घुस जाता है। वह खुशी जहां आयी, उसके साथ ईगो आ जाता है। जहाँ तेल कम पड़ा, जहाँ हवा घुसी पाइप के अंदर, और फिर गाड़ी काम नहीं करेगी। तो मन में आया कि भाई हम हल कर लेंगे–तो ईगो आ जाता है। और वहां रावण–आवण कोई नहीं है। वहाँ ये सब कुछ नहीं है, ये तो साधक के अन्तःकरण की बातें हैं, जिनका महापुरुषों ने एक नाटक के रूप में दिग्दर्शन कराया है। अब उस चित्र को तो अन्दर बना नहीं पाते, और वह नाटक जो उसकी नकल थी, उसको लोग असल मान लेते हैं। और उसी के पीछे पड़े रहते हैं। इसलिए यह किताबी शिक्षा नहीं है, जो समझ मेंआ जाये। यह अध्यात्मविद्या तो उसी भाग्यशाली के लिये है, जो प्राण हथेली में लिये रहते हैं। जो गर्दन देने के लिए तैयार होते हैं। जो अपने को समर्पित करते हैं और सबसे ज़्यादा–जो हर चीज़ में आगे रहते हैं, त्याग में, अनुराग में– उनको यह पकड़ में आता है। अन्यथा यह बहुत क्लिष्ट विषय है।

हरिः ओम